International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 01-05

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 01-05
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-02-2023
Accepted: 04-03-2023

शैलेश कुमार कुशवाहा
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
शैलेश कुमार कुशवाहा
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

राजेन्द्रकर्णपूर में वक्रोक्ति विमर्श

शैलेश कुमार कुशवाहा

सारांश
संस्कृत काव्यशास्त्र में छः सिद्धान्त विद्वत्समाज में बहु काल से समादृत हैं। इन सिद्धान्तों में काव्य के मूल तत्त्व की गवेषणा की गयी है। आचार्य कुन्तक द्वारा विवेचित वक्रोक्ति सिद्धान्त इन छः सिद्धान्तों में महत्त्वपूर्ण है। आचार्य कुन्तक अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' में 'वक्रोक्ति' को काव्य का 'जीवित' अर्थात् प्राणतत्त्व प्रतिपादित किया है तथा काव्य के अन्य तत्वों को वक्रोक्ति का अङ्गभूत सिद्ध किया है। इस शोध प्रपत्र में वक्रोक्ति की दृष्टि से राजेन्द्रकर्णपूर का विवेचन किया जाएगा।

कूटशब्दः राजेन्द्रकर्णपूर, वक्रोक्ति, शम्भु, हर्षदेव

प्रस्तावना
संस्कृत काव्यशास्त्र में छः सिद्धान्त विद्वत्समाज में बहु काल से समादृत हैं। इन सिद्धान्तों में काव्य के मूल तत्त्व की गवेषणा की गयी है। आचार्य कुन्तक द्वारा विवेचित वक्रोक्ति सिद्धान्त इन छः सिद्धान्तों में महत्त्वपूर्ण है। आचार्य कुन्तक अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' में 'वक्रोक्ति' को काव्य का 'जीवित' अर्थात् प्राणतत्त्व प्रतिपादित किया है तथा काव्य के अन्य तत्वों को वक्रोक्ति का अङ्गभूत सिद्ध किया है।

परिभाषा एवं महत्त्व
"वक्रोक्ति" शब्द की रचना दो पदों 'वक्र' तथा 'उक्ति' के योग से होती है- वक्र+उक्ति= वक्रोक्ति, वक्र का अर्थ है- टेढ़ा, असमान्य, तिरछा, विचित्र, आदि। उक्ति का अर्थ है- कथन। इसका अभिप्राय है- सामान्य कथन से भिन्न विलक्षण-कथन या अलौकिक चमत्कार से युक्त कथन।[1]

वक्रोक्ति सिद्धान्त की स्थापना 'काव्यजीवित' के रूप में तो दसवीं शताब्दी में कुन्तक के द्वारा ही हुई, परन्तु उसके बीज संस्कृत काव्य-शास्त्र में पहले से ही विद्यमान थे। अन्य सिद्धान्तों की तरह वक्रोक्ति सिद्धान्त भी कोई आकस्मिक घटना न होकर एक विचार-परम्परा की परिणति ही है।[2]

'वक्रोक्ति' शब्द का काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम प्रतिपादन भामह के 'काव्यालङ्कार' में मिलता है। इनके अनुसार काव्य का सौन्दर्य-आधायक तत्त्व अलङ्कार है और किसी भी अलङ्कार का अस्तित्व वक्रोक्ति के विना नहीं हो सकता, वक्रोक्ति से रहित वाक्य में काव्यत्व नहीं होता, वह वार्तामात्र होता है।[3]

---

[1] शिक्षार्थी हिन्दी शब्दकोश, डॉ हरदेव बाहरी, पृ. ७३१

[2] भा. का. भू., पृ. १८३ डॉ नगेन्द्र

[3] भा. का. ल. २/८५

भामह के उपरान्त दण्डी ने समस्त वाङ्मय को दो भेदों में विभक्त किया- स्वभावोक्ति तथा वक्रोक्ति।[4] स्वभावोक्ति में पदार्थों का साक्षात् स्वरूप वर्णन होता है, यह आद्य अलङ्कार है।[5] जबकि वक्रोक्ति सहज वर्णन न होकर वक्र अर्थात् चमत्कारपूर्ण वर्णन होता है, उपमादि अन्य अलङ्कार सभी वक्रोक्ति के प्रकार हैं।[6] इन सभी में प्रायः किसी न किसी रूप में श्लेष से चमत्कार बढ़ती है।[7] अतिशयोक्ति के प्रसङ्ग में दण्डी ने अतिशयोक्ति को सभी अलङ्कारों का आधार माना है।[8] इस प्रकार दण्डी, आचार्य भामह की भाँति वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति की पर्यायता सिद्ध करते हैं।

आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्थालङ्कार माना है। इनके अनुसार सादृश्य सम्बन्ध पर आधारित लक्षणा 'वक्रोक्ति' कहलाता है।[9] असादृश्यनिबन्धना लक्षणा वक्रोक्ति नहीं होती। वक्रोक्ति की यह परिभाषा प्रायः उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलती। अतः वामन का यह दृष्टिकोण स्वीकृत नहीं हुआ, उसका केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रहा।

आचार्य रूद्रट के अनुसार वक्रोक्ति वाक्छल पर आश्रित शब्दालङ्कार है। उन्होंने इसके दो भेद किए हैं-

- काकु-वक्रोक्ति[10]
- श्लेष-वक्रोक्ति[11]

आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति का स्वतन्त्र प्रतिपादन नहीं किया है। उन्होंने अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति को एक मानते हुए इनको काव्य सौन्दर्य का अभिव्यञ्जक माना है। उनके अनुसार सभी अलङ्कार अतिशयोक्तिगर्भित होते हैं। महकवियों द्वारा विरचित वह काव्य की अनिर्वचनीय शोभा प्रदान करती है।[12]

आचार्य मम्मट ने वक्रोक्ति को शब्दालङ्कार मानकर काकु-वक्रोक्ति एवं श्लेष-वक्रोक्ति नामक दो भेदों का विवेचन किया है। उन्होंने श्लेष-वक्रोक्ति को पुनः भङ्गश्लेष तथा अभङ्गश्लेष वक्रोक्ति में विभाजित किया है।[13]

आचार्य कुन्तक ने भामह से प्रेरणा ग्रहण कर 'वक्रता' को काव्य का मूल तत्त्व माना है। कुन्तक वक्रता की व्याख्या करने से पूर्व काव्य का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ करते हैं-

कवेः कर्म काव्यम्।[14]

अर्थात् कवि का कर्म काव्य है। कुन्तक की यह धारणा काव्य की स्वायत्तता का उद्घोष करती है। काव्य का लक्षण स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्तक कहते हैं- काव्यतत्त्व को जानने वाले सहृदयों को आह्लादित कर देने वाले वक्र कविव्यापार से सुन्दर रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। उन्होंने शब्द और अर्थ दोनों को अलङ्कार्य माना है तथा इन दोनों (अलङ्कार्य) की अलङ्कृति वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य की शोभा से युक्त अर्थात् चातुर्यपूर्ण कथन रूप ही वक्रोक्ति है।[15] अर्थात् अभिधा से विचित्र कथन ही वक्रोक्ति है। इस प्रकार विदग्धभाव से युक्त कवि-कर्म के कौशल से जो अभिधा से भिन्न (विचित्र) उक्ति कही जाती है, उसे वक्रोक्ति कहते हैं।

भेद निरूपण

कुन्तक के अनुसार कविव्यापार की वक्रता के मुख्य रूप से छः प्रकार हो सकते हैं[16] जो निम्नलिखित है-

- वर्णविन्यासवक्रता
- पदपूर्वार्द्धवक्रता
- प्रत्ययाश्रितवक्रता
- वाक्यवक्रता
- प्रकरणवक्रता
- प्रबन्धवक्रता

वर्णविन्यासवक्रता

वर्णों का विन्यास 'वर्णविन्यास' कहलाता है। प्रसिद्ध प्रस्थान में सामान्यतः जिस प्रकार की वर्णयोजना होती है, उससे भिन्न एक विशेष प्रकार की वर्णयोजना के कारण शब्दशोभा में अतिशय उत्पन्न होता है। यह 'शब्दशोभातिशय' ही

---

[4] भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्। का. द. २/३६३

[5] नानावस्थ पदार्थाना रूप साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा ।। वही २/८

[6] वक्रोक्तिशब्देन उपमादयः संकीर्णपर्यन्ता अलङ्कारा उच्यन्ते। का. द. २की हृदयंगम टीका ८/

[7] श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्। का. द. २/३६३

[8] अलङ्कारान्तराणामप्येकमाहू परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ।। वही २/२२०

[9] सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः। का. ल. सू. वृ. ४८/३/

[10] विस्पष्टं क्रियमाणादक्लिष्टा स्वरविशेषतो भवति।
अर्थान्तरप्रतीतिर्यत्रासौ काकुवक्रोक्तिः ।। रू. का. ल. २/१६

[11] वक्त्रां तदन्यथोक्तं व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरदः।
वचनं यत्पदभंगैर्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्तिः ।। वही २/१४

[12] यतः प्रथमं तावदतिशयोक्तिगर्भता सर्वालङ्कारेषु शक्यक्रिया। कृतैव च सा महाकविभिः कामपि काव्यच्छविं पुष्यति। ध्वन्या. ३/३७ की वृत्ति

[13] यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ।। का. प्र. ९/७८

[14] व. जी. १/२ वृत्ति

[15] उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।। व. जी. १/१०

[16] कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः सम्भवन्ति षट्।
प्रत्येकं बहवो भेदास्तेषां विच्छित्तिशोभिनः ।। वही १/१८

'वर्णविन्यासवक्रता' कहलाता है। आचार्य कुन्तक द्वितीय उन्मेष में वर्ण विन्यास के वक्रभाव के विशेष लक्षण करते हुए कहते हैं-

जिस रचना में थोड़े-थोड़े व्यवधान, एक, दो अथवा बहुत से व्यञ्जन वर्ण अनेकशः संयोजित किए जाते हैं वह तीन प्रकार की 'वर्णविन्यासवक्रता' है।[17] यह वर्णविन्यासवक्रता ही प्राचीन आलङ्कारिकों के ग्रन्थों में 'अनुप्रास' के नाम से प्रसिद्ध है।[18]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में वर्णविन्यासवक्रता दृष्टिगोचर होती है-

धित्तं मल्लीकुसुमकलितं केलकर्णावतंसं
ध्वंसं सोऽपि व्रजतु विफलो रत्नताटङ्कटङ्कः ।।
हे राजानः प्रकृतिसरलैः शांभवैरेव सूक्तै-
र्युक्तः कर्तुं भवति भवतां केवलं कर्णपूरः।।[19]

इस पद्य में ककार, वकार तथा तकार का अनेक बार प्रयोग हुआ है। अतः यह वर्णविन्यासवक्रता का उदाहरण है।

पदपूर्वार्द्धवक्रता

सुबन्त पद का पूर्वार्द्ध 'प्रातिपदिक' होता है तथा तिङन्त पद का पूर्वार्द्ध 'धातु' होता है। इस प्रातिपदिक तथा धातु की वक्रता एक विशेष प्रकार का विन्यास है जो 'पदपूर्वार्द्धवक्रता' कहलाती है।[20] आचार्य कुन्तक ने इसके निम्नलिखित भेद किये हैं-

रूढिवैचित्र्यवक्रता, पर्यायवक्रता, उपचारवक्रता, विशेषणवक्रता, संवृतिवक्रता, वृत्तिवैचित्र्यवक्रता, भाववैचित्र्यवक्रता, लिङ्गवैचित्र्यवक्रता तथा क्रियावैचित्र्यवक्रता।

पर्यायवक्रता

पदपूर्वार्द्धवक्रता का एक प्रकार पर्यायवक्रता है। जब अनेक शब्दों द्वारा कथन सम्भव होने पर प्रस्तुत प्रकरण के अनुरूप कोई सर्वातिशायी विशेष पर्याय पद प्रयुक्त किया जाता है तो वह पर्यायवक्रता कहलाती है।[21] आचार्य कुन्तक द्वितीय उन्मेष में पर्यायवक्रता के विशेष लक्षण करते हुए कहते हैं- जो 'पर्याय' अभिधेय का अत्यन्त अन्तरङ्ग है, अभिधेय के अतिशय को पुष्ट करने वाला है, स्वयं अथवा विशेषण के द्वारा अभिधेय को अलङ्कृत करने में समर्थ है, जिस पर्याय को असम्भावित अर्थ का पात्र होने के अभिप्राय वाला कहा जाता है एवं जो अलङ्कारों से अलङ्कृत होने से मनोहारी रचना वाला पर्याय है, उससे जहाँ विचित्र्यता होती है, वह प्रकृष्ट पर्याय की वक्रता होती है।[22]

राजेन्द्रकर्णपूर के निम्नलिखित श्लोक में पर्यायवक्रता दृष्टिगोचर होती है-

कान्तिं कल्पय तान्तिमत्पय सखि स्वल्पापि नैवास्ति ते
मुक्ताशुक्तिषु वारिराशिरमणि श्रीताम्रपर्णि क्षतिः ।
अस्यालोक्य कुरङ्गकेतनकलालावण्यचौरं यशो
वर्तन्ते हि विमुक्तमौक्तिकलतोत्कण्ठाः कुरङ्गीदृशः ।।[23]

अर्थात् हे सखि! तुम अपने प्रिय से मिलन की चाह पैदा करो अथवा साज शृंगार करो। ग्लानि अर्थात् आत्महीनता की भावना को कम करो । समुद्र की पत्नी हे ताम्रपर्णी नदी ! अब तुम्हारे सुन्दर मोतियों की थोड़ी सी हानि भी नहीं होगी क्योंकि इस राजा के चन्द्रकला के सौन्दर्य को चुराने वाले शुभ्र यश को देख कर 'मृगनयनियों' ने उत्तम मोतियों की मालाओं की चाह छोड़ दी है ।

प्रस्तुत पद्य में मृगनयनी के हरिणाक्षी, मृगाक्षी, कमलाक्षी, सारङ्गाक्षी आदि अनेक पर्यायवाची शब्द विद्यमान होते हुए भी यहाँ पर प्रकरण के अनुरूप ही 'कुरङ्गीदृश' शब्द का प्रयोग किया गया है। जो नायिकाओं के नेत्रों की चञ्चलता के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। यथा- हरिण/कुरङ्ग के नेत्र चञ्चल होते हैं उसी प्रकार नायिकाओं में चञ्चलता होती है जो यहाँ प्रयुक्त 'कुरङ्गीदृशः' पद से व्यक्त हो रहा है जो अपूर्व चमत्कार को प्रकाशित कर रहा है। अतः यह पर्यायवक्रता का उदाहरण है।

वाक्यवक्रता

वाक्य की वक्रता पदादि की वक्रता से भिन्न है। सुकुमार आदि मार्गों में विद्यमान वक्र शब्दों, अर्थों, गुणों एवं अलङ्कारों की सम्पत्ति से भिन्न, चित्र के मनोहर चित्रपट,

---

[17] एको द्वौ बहवो वर्णा बध्यमानाः पुनः पुनः ।
स्वल्पान्तरास्त्रिया सोक्ता वर्णविन्यासवक्रता ।। व. जी. २/१

[18] एतदेव वर्णविन्यासवक्रत्वं चिरन्तनेष्वनुप्रास इति प्रसिद्धम् । व. जी., पृ. १३८, डॉ वेद प्रकाश डिंडोरिया

[19] राजेन्द्र. ७२

[20] पदस्य सुबन्तस्य तिङन्तस्य वा यत्पूर्वार्द्धं प्रातिपदिकलक्षणं धातुलक्षणं वा तस्य वक्रता वक्रभावो विन्यासवैचित्र्यम् । व. जी., पृ. १३८

[21] 'पर्यायवक्रत्वं' नाम प्रकारान्तरं पदपूर्वार्द्धवक्रतायाः यत्रानेकशब्दाभिधेयत्वे वस्तुनः किमपि पर्यायपदं प्रस्तुतानुगुणत्वेन प्रयुज्यते । वही, पृ. १४१

[22] अभिधेयान्तरतमस्तस्यातिशयपोषकः ।
रम्यच्छायान्तरस्पर्शात्तदलङ्कर्तुमीश्वरः ।। व.जी. २१०/
स्वयं विशेषणेनापि स्वच्छायोत्कर्षपेशलः ।
असंभाव्यार्थपात्रत्वगर्भं यश्चाभिधीयते ।। वही २१/१
अलंकारोपसंस्कारमनोहारिनिबन्धनः ।
पर्यायस्तेन वैचित्र्यं परा पर्यायवक्रता ।। वही २१/२

[23] राजेन्द्र. २९

उसपर अंकित रेखाचित्र, उसके रङ्गों तथा उसकी कान्ति से भिन्न चित्रकार को किसी अलौकिक निपुणता के समान, उस प्रकार के अनिर्वचनीय ढङ्ग से वर्णन रूप प्राणवाली कवि की कुछ अपूर्व सरलता वाक्य की वक्रता कहलाती है।[24]

उल्लेखं निजमीक्षते भणितिषु प्रौढिं परां शिक्षते
संघत्ते पदसंपदः परिचयं धत्ते ध्वनेरध्वनि ।
वैचित्र्यं वितनोति वाचकविधौ वाचस्पतेरन्तिके
देव त्वद्गुणवर्णनाय कुरुते किं किं न वाग्देवता ।।[25]

अर्थात् देवी सरस्वती अपने लिखे हुए को पुनः पढ़कर देखती है। सुन्दर-सुन्दर वचन कहने के लिए बहुत बड़ी प्रवीणता सीखती है। सुन्दर-सुन्दर पदों की शोभाओं को धारण करती है अर्थात् उपयुक्त पदों को चुनती है। ध्वनि के मार्ग से सम्बद्ध ज्ञान प्राप्त करती है। देवताओं के गुरु बृहस्पति के पास स्तुति पाठ के कर्म के लिए विचित्र उपायों का विस्तार करती है अर्थात् विचित्र ढंग से स्तुतिगान करने के लिए बृहस्पति से शिक्षा प्राप्त करती है। इस प्रकार हे महाराज! आपके गुणों का वर्णन करने के लिए वाग्देवी सरस्वती क्या-क्या नही करती ?

प्रस्तुत पद्य में राजा के गुणों का वर्णन करने के लिए देवी सरस्वती पूरी सावधानी से क्या-क्या नहीं करती है अर्थात् सबकुछ करती है इस अर्थ की प्रतीति पूर्व लिखित वाक्यार्थ से होती है। अतः इस पद्य में वाक्यवक्रता प्रतीत होती है।

प्रकरणवक्रता

आचार्य कुन्तक चतुर्थ उन्मेष में प्रकरणवक्रता के प्रथम प्रकार को परिभाषित करते हुए कहते हैं- जहाँ पर जड़ से लेकर ही असम्भावित अंकुरण वाले कवि मनोरथ के प्रस्तुत किए जाने पर एक अनिर्वचनीय और असीम तथा निर्बाध उत्साह के स्फुरण के कारण सुशोभित होने वाली और अपने आशय की उद्भावना के कारण मनोहर लगने वाले व्यवहार करने वालों की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है वह प्रकरणवक्रता कहलाता है।[26]

शान्त्यै दर्पवतां जयाय जगतां संपत्तये याचतां
सम्मानाय सतां हिताय महतां तापाय पृथ्वीभृताम् ।
सोल्लासेन सकौतुकेन शमितध्यानेन दूरीकृत-
स्वाध्यायेन संमाप्तसर्वतपसा त्वं वेधसा निर्मितः ।।[27]

अर्थात् प्रसन्नता से भरे हुए, कौतूहल पूर्ण, ध्यान को छोड़ने वाले, वेदाध्ययनादि के स्वाध्याय को छोड़े हुए, सभी प्रकार की तपस्या को खत्म करने वाले ब्रह्मा ने अभिमानियों की शान्ति के लिए, सारे संसार को जीतने के लिए, याचको को सम्पत्ति देने के लिए, सज्जनों के आदर के लिए, पूजनीय महापुरुषों के भले के लिए और पृथिवी के स्वामी राजाओं को सन्ताप देने के लिए आप को (हर्षदेव) बनाया है।

प्रस्तुत पद्य में राजा हर्षदेव पर ब्रह्मकृपा के फलस्वरूप उदार चरित्र की उद्भावना की गई है जो सहृदयों के चित्त को आनन्दित करता है। यहाँ पर राजा हर्षदेव को राजपद की प्राप्ति भोग विलासों के लिए न होकर अभिमानी राजाओं के अन्त, लोककल्याण व अन्य राजाओं की सहायतार्थ हुई है। इस वर्णन से राजा हर्ष के उदारता, दानशीलता, निरभिमानिता, सहृदयता आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है। जिससे प्रजाओं में अपूर्व प्रसन्नता व्यक्त होती है। अतः यह पद्य भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना या चरित्र वैशिष्ट्य से युक्त प्रकरण वक्रता का उदाहरण है।

प्रबन्धवक्रता

सम्पूर्ण प्रबन्ध की दृष्टि से विन्यास सौन्दर्य 'प्रबन्धवक्रता' कहलाता है। कुन्तक ने इसके छः भेदों में नामकरण वक्रता को परिभाषित करते हुए कहते हैं- काव्य में प्रतिपाद्य पदार्थ के सौन्दर्य को तो रहने दीजिए, केवल प्रधान योजना के चिन्ह वाले नाम के द्वारा भी कवि किसी अपूर्व वक्रता को उत्पन्न कर देता है।[28]

आनन्दं मुचुकुन्दकन्दलि भजास्वस्थासि वासन्तिके
कल्याणं तव मल्लिके कुशलिनी जातासि हे मालति ।
अद्यैतद्यशसि श्रुतिप्रणयितां याते न कुर्वन्ति वः
कर्णोत्तंसरसान्नवीनकलिकाभङ्गं कुरङ्गीदृशः ।।[29]

हे मुचुकुन्द के अङ्कुर! प्रसन्नता को प्राप्त करो, हे वासन्ती लता, तुम नीरोग और सन्तुष्ट रहो, हे मल्लिका लता तुम्हारा शुभ हो और हे मालती लता तुम अब राजी खुशी रहोगी। क्योंकि आज इस राजा के यश के कर्णप्रिय हो जाने पर

---

[24] मार्गस्थवक्रशब्दार्थगुणालङ्कारसंपदः ।
अन्यद्वाक्यस्य वक्रत्वं तथाभिहितिजीवितम् ।। व.जी. ३/३
मनोज्ञफलकोल्लेखवर्णच्छायाश्रियः पृथक् ।
चित्रस्येव मनोहारि कर्तुः किमपि कौशलम् ।। वही ३/४

[25] राजेन्द्र. २६

[26] यत्र निर्यन्त्रणोत्साहपरिस्पन्दोपशोभिनी
व्यावृत्तिर्व्यवहर्तृणां स्वाशयोल्लेखशालिनी ।। व.जी. ४/१
अव्यामूलादनाशंक्यसमुत्थाने मनोरथे ।
काप्युन्मीलति निःसीमा सा प्रबन्धांश वक्रता ।। वही ४/२

[27] राजेन्द्र. ७

[28] अस्तां वस्तुषु वैदग्ध्यं काव्ये कामपि वक्रताम् ।
प्रधानसंविधानाङ्कनाम्नापि कुरुते कविः ।। व.जी. ४/२४

[29] राजेन्द्र. १०

मृगनयनियां कर्णाभूषणों के प्रति प्रेम के कारण तुम्हारी कलियों को नहीं तोड़ती।

प्रस्तुत पद्य से ही इस ग्रन्थ 'राजेन्द्रकर्णपूर' नाम की सार्थकता की ओर कवि ने संकेत किया है। क्योंकि राजा हर्ष का यशोगान सभी को कर्णप्रिय है इसलिए उन्हें अन्य कर्णपूरों की आवश्यकता नहीं होती। अतः नामकरण वक्रता के माध्यम से इस पद्य में प्रबन्ध वक्रता दृष्टिगोचर होती है।

अतः वक्रोक्ति के दृष्टि से अध्ययन करने पर वर्णविन्यासवक्रता, पर्यायवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता तथा प्रबन्धवक्रता का वर्णन प्राप्त हुआ है।

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

1. काव्यमाला, (प्रथम गुच्छक) दुर्गा प्रसाद, मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, १९२९
2. राजेन्द्रकर्णपूर, (हि.व्या.) (डॉ.) वेदकुमारी, वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९७३
3. कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित (व्या.) श्री राधेश्याम मिश्र, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वचतुर्थ संस्करण, १९९८
4. कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित (व्या.) (डॉ.) वेद प्रकाश डिंडोरिया, दिल्ली: शिवालिक प्रकाशन, २०१७
5. कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित (व्या.) (आचार्य) विश्वेश्वर, दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९९५[30]

[30] माधवाचार्य, सन्-२०१०, सर्वदर्शनसङ्ग्रह, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृ.सं. २४